ज्वालामुखी के मुहाने पर

यह एक पुराना और आजमाया हुआ प्रयोग है। किसी समाज को तोड़ना और उसे बिखराना हो, उसे अपनी जमीन से बेजमीन करना हो तो उसके सांस्कृतिक मूल्यों और जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदल देना चाहिये। अंग्रेज ऐसा करके देख चुके हैं। अब बाजार या विकसित देश ऐसा कर रहे हैं। पिछले एक दशक या उससे कुछ अधिक समय से एक धीमा पर बहुत ही प्रभावी जहर समाज में घोला जा रहा है। सामाजिक मूल्यों और जीवन जीने के दृष्टिकोण को इरादतन बदलने के लिए ऐसा किया जा रहा है। इसका प्रभाव भी अब बहुत साफ दिखाई देने लगा है। यह प्रभाव जीवन मूल्यों और सामाजिक रिश्तों पर केन्द्रित है। इससे न केवल सांस्कृतिक मूल्य ही प्रभावित हुए हैं वरन रिश्तों के आधार भी दरकने लगे हैं। यह बहुत ही छिपा हुआ है और युवा पीढ़ी को अपने घेरे में ले रहा है। इंडिया टुडे सहित कुछ पत्रिकाओं ने इस बदलाव के बारे में अपने सर्वेक्षणों में कोई एक दशक से बताया भी है। पर उससे आंख खुलने के बजाये मुंद गई हैं, ऐसा लगता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस जहरीले बदलाव में मीडिया की बड़ी भूमिका है और वह बढ़ती जा रही है।

भारत और पूरे दक्षिण एशिया में रिश्तों के संबंध में कुछ नियम, मर्यादा और दृष्टिकोण रहे हैं। वैसे तो पूरी दुनिया में ही कमोवेश संबंधों के बारे में ऐसे ही दृष्टिकोण रहे हैं। मसलन जो संबंध पति-पत्नि का है और उसके संबंध में जो मर्यादा और दृष्टिकोण रहा है वह ठीक वैसा ही नहीं है जैसा मां-बेटे, भाई-बहन, पिता-बेटी आदि का है। स्नेह, प्रेम और उदार व्यवहार सब संबंधों में है पर उसकी आंगिक और भावनागत अभिव्यक्तियां पृथक-पृथक रही हैं। मोटे तौर पर इस तरह के संबंधों में व्यवहार भारत की ही तरह रहा है। कामजन्य कामना और भावना के लिये पत्नि का विकल्प कोई अन्य स्त्री नहीं रही है। स्त्री और पुरूष की संज्ञा संबंधों के साथ होने वाले व्यवहार में एकदम बदलती रही है। एक ऋषि पुत्र ने किसी भी स्त्री के साथ किसी भी पुरूष का पशुवत काम-व्यवहार को विवाह और मर्यादा नियमन के साथ अनुशासित किया और जिससे पूरी दुनिया ने भारतीय परिवार परम्परा की प्रशंसा की है। पर यह पूरा ढांचा काम के इस धीमे जहर से संकट में है, इसे न तो सामाजिक संचेतना के जिम्मेदार लोग मान रहे हैं और न ही मीडिया अपनी तरफ से दिये जा रहे जहर के संबंध में होश में है। सतह पर तो वही सब हो रहा है जो हम सांस्कृतिक रूप से करते आये हैं पर सतह के भीतर क्या हो रहा है उसके प्रभाव से लोग होश में हैं ऐसा उनके व्यवहार से पता नहीं चल रहा है।

अमरीका, ब्रिटेन सहित यूरोप के अनेक देश काम के आवेग में स्त्री के साथ रचे गये सामाजिक संबंधों में आ रहे बदलाव को लेकर चिंतित हैं और इसके लिए मीडिया के साथ ही सामाजिक व्यवस्था के लिए जबावदार लोगों से बहस और मांग भी करने लगे हैं। द वीक के 17 जून के अंक में इस बदलाव को महामारी तक कहा गया है और संकेत दिया गया है कि यह बदलाव पूरे सांस्कृतिक मूल्यों और जीवन के प्रति लोगों के दृष्टिकोण को बदल देगा। यह भी कहा गया है कि सेक्स आधारित यह व्यवहार नकारात्मक और हिंसात्मक है जिससे समाज का अहित होगा। ब्रिटेन ने भी इस बदलाव को अनुभव किया है और उसे भी लग रहा है कि प्रगति और आजादी की आड़ में हो रहे इस तरह के व्यवहार और उसके प्रति युवाओं का बढ़ता रूझान हितकारी नहीं है।

यह उन देशों की चिंतायें हैं जो हमारी जीवन शैली के आदर्श बने हुए हैं। कामजन्य यह महामारी इंटरनेट पर कामक्रीड़ा और उसमें आक्रामकता का तड़का देकर बढ़ाई गई है। इस कामक्रीड़ा में फंतासी और उद्दाम आवेग को प्रबलतम किया जाता रहा है। जिसे शुरू में तो युवा अथवा प्रौढ़ मनोरंजन समझा गया और स्वीकार किया गया पर अब कुछ मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर उसके हिंसात्मक प्रभाव को समझा गया है। यह भी देखा गया कि अब सभी संबंधों को केवल स्त्री और पुरूष में बदलकर उसे एक आदिम और नैसर्गिक मांग या भूख के रूप में वैधता दिलाने की लगातार कोशिश की गई है। विकसित मुल्कों के छिपकर किये और देखे जा रहे व्यवहार का प्रभाव उन सभी देशों पर पड़ा है जिनका आधार सांस्कृतिक और धार्मिक-आध्यात्मिक रहा है। सभी धर्म इससे प्रभावित हैं। सभी समाजों में इस कामजन्य संबंध परिवर्तन का प्रभाव अब सतह पर भी आने लगा है। इस सबसे व्यवस्थित और अनुशासित समाज में पशुपन फिर से पैदा हो जाने की आशंका निरंतर बढ़ रही है जिसे कुछ विदेशी मीडिया ने और इंडियन एक्सप्रेस ने अब व्यक्त किया है। यह आशंका निराधार भी नहीं है। एक मनोवैज्ञानिक नील मालमथ ने लम्बे समय तक काफी लोगों के सेक्स व्यवहार का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि कामक्रीड़ा का उद्दाम आवेग निरंतर हिंसात्मक वृत्ति को विकसित करता है और वह अपनी फंतासी के सहारे ऐसी नई कोशिशें करता है जिससे यह वृत्ति और कामना सीमायें और मर्यादायें तोड़ देती हैं। यह उसी तरह के व्यवहार को जन्म देता है जैसा पूर्व में शराब के संबंध में किये गये एक अध्ययन से जाना-समझा गया था। उस अध्ययन का निष्कर्ष था कि शराब आक्रामकता और हिंसात्मक आवेक को विकसित करती है।

कामक्रीड़ा की मर्यादाहीन, उन्मुक्त और उद्दाम चाहत को बहुत पहले, टीवी के पहले पुस्तक और पत्रिकाओं के सहारे फैलाने की कोशिश की गई थी। तब इसकी गति धीमी थी। इंटरनेट ने इसमें हवाई पंख लगा दिये जिससे यह पूरी दुनिया में सरलता से फैल गई है। अभी कोई भी पूरे विश्वास से नहीं कह सकता कि कितनी साइट इस काम को कर रही हैं। जो अध्ययन हुए हैं वह इतना ही कह

पाते हैं कि इंटरनेट पर जितना भी कंटेंट है उसका 37 प्रतिशत पोर्नोग्राफी अथवा सेक्स से संबंधित है जो किसी भी एक विषय के संबंध में सबसे अधिक है। कुछ इसे 12 प्रतिशत मानते हैं। एक अध्ययन में कहा गया है कि जितने नेट का उपयोग करने वाले हैं उनमें 42 प्रतिशत कामक्रीड़ा को देखते पढ़ते हैं। सात करोड 20 लाख से दस करोड़ से अधिक रोजाना इसे देखते हैं। इंडियन एक्सप्रेस ने भारतीय दर्शकों के संबंध में कहा है कि 75 प्रतिशत युवा ऐसे हैं जिन्होने इस तरह की सामग्री को देखा और पढ़ा है। ये युवा उच्चतर माध्यमिक स्तर के हैं। अब अनुमान लगायें कि बाकी कितने अन्य इससे जुड़े हुए हैं। सभी यह मानते हैं कि इसका विस्तार लगातार हो रहा है और इसमें नये आयाम और उपक्रम जोड़े जा रहे हैं। इसकी व्यावसायिक उपलब्धताओं के बारे में भी बताया जाता है। इस सबसे इसके प्रभाव की भयावहता के संबंध में अनुमान किया जा सकता है।

अमरीका और ब्रिटेन में इस सब को रोकने और नियमानुकूल करने की मांग तेजी से उठ रही है और उम्र तथा परिवार के आधार से उस सबको श्रेणीबध्द किया जाने लगा है। पर चीन सहित एशियाई देशों में इस बारे में बहुत उदासीनता और ठंडापन है। भारत ने तो इस संबंध में अपने को आई. टी. के नियमों से बाहर जाने का सोचा भी नहीं है। मीडिया में भी इसे रोकने के बजाय इस बारे में एक स्थाई सामग्री मानकर परोसने का क्रम निरंतर बढ़ रहा है। यह अचरज ही तो है कि 210 से अधिक साइट भारत प्रवर्तित और प्रबंधित हैं। यह भी हो सकता है कि कम आंकडा हो। जो लोग इसके जानकार हैं वे बताते हैं कि पिछले दो वर्षों में ही भारतीय भाषाओं में इस तरह की सामग्री उपलब्ध कराने वाली साइट विकसित हुई हैं। इस सबके बाबजूद मीडिया इसे समाज के आधार को दरकाने वाला और सांस्कृतिक रूप से इसे बिखराने वाला नही मानकर अपने स्वार्थ और व्यावसायिक हितों को ही तरजीह देता है तो उसे आप क्या कहेंगे। समाज के उत्तरदायी लोगों को यह पता न हो, यह तो संभव नहीं है। वे इस बारे में क्यों चुप हैं, वे जाने। सरकार को इस सब के बारे में जानकारी होने के बाबजूद अपंगता अनुभव हो रही हो तो वह कितनी संवेदनशील कही जायेगी। तस्वीर यह है। तस्वीर आसन्न संकट को बहुत साफ बता रही है फिर भी हम आनंद की बाँसुरी बजाते हुए निंदियाते रहें तो जान लीजिये, बहुत बुरे दिन आने वाले हैं।

****